International Journal of Sanskrit Research 2025; 11(2): 34-36

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2025; 11(2): 34-36
© 2025 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 06-01-2025
Accepted: 10-02-2025

डॉ. पवन कुमार शर्मा
सहायक आचार्य (संस्कृत),
राजकीय महाविद्यालय,
रामगंजमंडी, राजस्थान, भारत

Corresponding Author:
डॉ. पवन कुमार शर्मा
सहायक आचार्य (संस्कृत),
राजकीय महाविद्यालय,
रामगंजमंडी, राजस्थान, भारत

मनुस्मृति और भारतीय ज्ञान परम्परा में विधि न्याय का आत्मतत्त्व

पवन कुमार शर्मा

DOI: https://www.doi.org/10.22271/23947519.2025.v11.i2a.2585

सारांश
भारतीय ज्ञान परंपरा में विधि न्याय की अविरत धारा प्रवाहित रही है जो वैदिक साहित्य में प्रकट रूप से दिखाई देने से पहले भी विद्यमान थी किंतु यह धारा स्मृति साहित्य में अपने विराट स्वरूप में हमें दिखाई देती है। इसमें मनुस्मृति का स्थान विशिष्ट है जिसमें संपूर्ण ग्रंथ ही इस अवधारणा में प्रेरित होकर मार्गदर्शन करता है। इसमें कर्तव्य अकर्तव्य, धर्म अधर्म, दंड, साक्ष्य प्रायश्चित इत्यादि विषयों में विधि निषेध का विशद विवेचन है जो कि भारतीय सनातन विधि एवं न्याय की परंपरा में अत्यंत महत्वपूर्ण है। इसमें अनेक स्थान ऐसे हैं जो की आधुनिक परिप्रेक्ष्य में भी अनुकरणीय एवं पालनीय हैं। क्योंकि यह विधि न्याय की मौलिक अवधारणा का आत्म तत्व का ग्रहण करते है। पहले स्मृतिकार विधि निषेध का विस्तार में वर्णन कर बाद में उनके उल्लंघन पर दंड विधान का बहुत सूक्ष्म वर्णन करते हैं। स्मृतिकार धर्मस्वरूप, वर्णाश्रमधर्म, व्यवहार वर्णन, संस्कार, राजधर्म, दण्ड, प्रार्याश्चत के बारे में विविध स्थान पर अनेक सूत्र प्रदान कर न्याय का स्वरूप स्पष्ट करते हैं जो कि भारतीय समाज के साथ वैश्विक समाज के लिए भी आधुनिक तथा परंपरागत विषयों में हितकर सिद्ध होती है अतः मनुस्मृति की विधि न्याय विषयक अवधारणा सर्वदा सर्वजनपालनीय है।

कूटशब्दः धर्म, विधि, न्याय, दंड, साक्ष्य, प्रायश्चित

प्रस्तावना
भारतीय ज्ञान परंपरा वेदो को अपौरूषेय मानने से कालसीमा से परे अनन्त है। उसका लौकिक अवतरण वेदो में स्पष्ट है। वेदों में विधि निषेध की विस्तृत चर्चा भारतीय समाज के लिए कर्तव्य अकर्तव्य के विषय में राजमार्ग है। वैदिक वाङमय के पश्चात् स्मृति साहित्य में विधि निषेध को स्पष्ट रूप से स्वीकृत कर प्राधान्येन भी वर्णन किया गया है जिसमें मनुस्मृति विशेषतः उल्लेखनीय है। इसमें धर्मशास्त्र, विधि न्याय, दण्ड, प्रार्याश्चत, वर्णाश्रम, व्यवहार इत्यादि विषयों का बहुत व्यवस्थित सूक्ष्म और अद्भुत वर्णन है जो सार्वकालिक और सार्वभौमिक उपयोगी सिद्ध होता है। इसमें विधिन्याय के विविध उपविषयो पर इस तरह विचार किया गया है कि जिन्हें हम आधुनिक परिप्रेक्ष्य में भी पालन करते है। इसी ग्रन्थ में कतिपय विषयों में आधुनिक परिप्रेक्ष्य में विचार हेतु शोध अन्तराल है अतः इन विषयों पर यहां क्रमशः विचार प्रस्तुत है।
वर्णाश्रम के प्रसंग में विविध विषयों पर व्यवस्था दी गयी है। सभी के लिए सार्वभौमिक धर्म लक्षण और उपदेश भी कहा गया। त्याग को सर्वश्रेष्ठ बताया गया है।

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति।
प्रापणात् सर्वकामानां परित्यागो विशिष्यते।।[1]

यहां त्याग को श्रेष्ठ बताकर भोगसंस्कृति को हेय बताया गया है जो कि संसाधनो के उपभोग एवं न्यूनता के संदर्भ बहुत उपयोगी उपदेश है। त्याग में जहाँ वञ्चितों हेतु उपलब्धता होती है वहीं प्राकृतिक न्याय का पोषण भी होता है। यह मनु के सामाजिक न्याय के प्रयास का प्रावधान है।
साधारण शिष्टाचार में मनुप्रदत्तव्यवस्था सर्वदा पालनीय है। मार्ग किसे देना चाहिए इसमें मनु ने वाहन वाले को, नब्बे वर्ष से अधिक वृद्ध, रोगी, बोझवाला, स्त्री, विद्यार्थी, राजा और दूल्हा यह प्राथमिकता से तय किये हैं जो सर्वदा पालनीय है इस विधान का रोगी या वी.आई.पी. के लिए आज भी यातायात व्यवस्था में प्रभाव स्पष्ट है।[2] विद्यार्थी हेतु या सभी के लिए सूर्योदय और सूर्यास्त के समय सोने का निषेध है जो आधुनिक चिकित्सा विज्ञान की दृष्टि से भी उचित नहीं है।

तं चेदभ्युदियात्सूर्यः शयानं कामचारतः।
निम्लोचेद्वाष्यविज्ञानाज् जपन्नुपवसेद् दिनम्।[3]

यह दिनचर्या के विषय में सामान्य विधि है। जिस तरह भारतीय संविधान, मूल कर्तव्य के पालन की नागरिकों से अपेक्षा करता है वैसे ही मनु ने अनेक सामान्य नागरिक कर्तव्यों का विभिन्न संदर्भ में वर्णन किया है। जल प्रदूषण के विषय मे नागरिक शिष्टाचार की अपेक्षा की है।

नाप्सु मूत्रं पुरीषं वा ष्ठीवनं वा समुत्सृजेत्।
अमेध्यलिप्तमन्यद्वा लोहितं वा विषाणि वा।।

हम इसके विपरीत हमारी पूजनीय जल स्रोत नदियों में मलमूत्र और विष तुल्य रसायन डालकर इस व्यवस्था का उल्लंघन कर प्रत्यक्ष और परोक्ष दण्ड भुगत रहे हैं। यह पर्यावरण संबंधी प्रावधानो मे आदर्श मनुविधान है।
धन के विषय में कहते हुए मनु सामाजिक न्याय के विषय में व्यवस्था देते प्रतीत होते हैं।

यत्किचिदपि दातव्यं याचितेनानसूयया।
उत्पत्स्यते हि तत्पात्रं यन्तारयति सर्वतः।।[5]

मनु सबसे यथाशक्ति दान की अपेक्षा कर सामाजिक न्याय से समाज को पूर्ण करने का निर्देश देते हैं जो सर्वदा पालनीय है। जहाँ प्रचुर धनार्जन के बाद दान के स्थान पर मनु आरंभ मे ही यथाशक्य दान के पक्षघर है।
मनु शाकाहार के बारे में विचार करते हुए इसके प्रशंसा करते हैं। मांसाहार की निंदा करते हैं।

समुत्पत्ति च मांसस्य वधबन्धौच देहिनाम्।
प्रसमीक्ष्य निवर्तेत सर्वमांसस्य भक्षणात्।।
अनुमन्ता विशसिता निहन्ता क्रयविक्रयी।
संस्कर्ता चोपहर्ता च खादक श्चेतिघातकाः।।[6]

यह प्राणी मात्र के प्रति हिंसा की निंदा तो है ही प्राकृतिक न्याय और पर्यावरण की
दृष्टि से बहुत स्वागत योग्य है। यहां नियम रहित मांसभक्षी की तुलना पिशाच के साथ से की गई है। शाकाहारी को लोकप्रिय और निरोगी बताया गया है। मांसाहार की तुलना मे शाकाहार को प्रश्रय देकर स्मृतिकार इस पूरे मांस व्यापार मे शामिल तंत्र का ही अनौचित्य प्रतिपादित करते हैं मनु के अनुसार परमांस से स्वमांस वर्धन अत्यंत पापमय है।

स्वमांस परमांसेन यो वर्धयितुमिच्छति अनभ्यर्च्य पितृहन्देवांस्ततोडन्यो नास्त्यपुण्यकृत्।।[7]

गृहस्थाश्रम को तीनों आश्रम का पालक बताया गया है। इसके साथ ही धर्म के 10 लक्षण भी प्रतिपादित किए हैं।

धृतिःक्षमा दमोडस्तेयं शौचमिन्द्रयनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्।।[8]

इन दस लक्षणों को अनुवर्तन करने पर व्यक्ति सहज ही विधिसम्मत न्यायसम्मत आचरण करता है। क्योंकि धर्म भारतीय समाज में प्रारम्भ से ही श्रद्धा का विषय है। व्यक्ति जो कानून के भय को भी कहीं जगह स्वीकार नहीं करता है किंतु ईश्वर के भय से धर्म को प्रमाण मानकर वह कर्तव्य का निश्चय करता है। इन्हीं धर्म लक्षणों में हमें स्मृतिकार द्वारा धर्म के माध्यम से विधि एवं न्याय के शासन की स्थापना का प्रयास भी द्योतित होता है। यदि हम इन दश धर्म लक्षण के स्वरूप पर विचार करें तो संतोषी, क्षमाशील, जितेन्द्रिय, न्यायपूर्वक धन लेने वाला इन्द्रियो को वश मे रखने वाला, बुद्धि से कार्य करना, शिक्षित सत्यवादी और क्रोध न करने वाला प्रायः किसी भी प्रकार का ऐसा अनैतिक कार्य नहीं करेगा जिसके लिए उसे विधि स्थापित दण्ड प्राप्त हो। धर्म के इन लक्षणों को प्रारंभ में ही अभ्यास में लाया जाए तो अपराध पूर्व मनोवृत्ति में परिष्कार निश्चित है। यह भारतीय ज्ञान परंपरा में धर्म का विधिन्यायव्यवस्था के साथ नित्य संबंध को भी प्रतिपादित करता है। जो धर्मसम्मत है वह निश्चय ही विधिसम्मत भी होगा। किंतु जो विधिसम्मत है वह आवश्यक नहीं की धर्मसम्मत भी हो जैसे लिव इन रिलेशनशिप के बारे में घरेलू हिंसा अधिनियम 2005 की धारा 2 (एफ) के तहत तथा इंदिरा शर्मा बनाम वी ए वी शर्मा 2013 के मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय में व्यवस्था दी है। जबकि स्मृतिकार मनु ने आठ प्रकार के विवाह में चार ब्राह्म, आर्ष प्राजापत्य दैव को श्रेष्ठ बताकर इनका अनुवर्तन करने की ही व्यवस्था दी है। इसका परिणाम उत्तम संतान प्राप्ति बताई गई है जबकि निन्दित विवाह में निन्दित संतान प्राप्ति कहकर इनको त्याज्य बताया है।

ब्राह्मादिषु विवाहेषु चतुषवेवानुपूर्वशः।
ब्रह्मवर्चस्विनः पुत्राः जायन्ते शिष्टसंम्मताः।।
अनिन्दितैः स्त्रीविवाहैरनिन्द्या भवति प्रजा।
निन्दितैरः निन्दिता नृणां तस्मान्निन्द्यानि विवर्जयेत्।।[9]

इस तरह भारतीय सनातन परंपरा में धर्मानुकूल औचित्यपूर्ण परिणाम पर विचार कर विधि न्याय की रचना का प्रयास है।
प्रत्यक्ष रूप से मनु सभी वर्णाश्रम के लिए विधि निषेध व्यवस्था का प्रतिपादन करते हैं। राजधर्म के बारे में वर्णन करते हुए विधि न्याय के संबंध में सातवें आठवें अध्याय में विस्तृत वर्णन है। स्मृतिकार का दण्ड संहिता की बहुत प्रशंसा कर इसे न्याय व्यवस्था हेतु नितांत आवश्यक बताया है। देश काल, शक्ति, शास्त्र अनुसार राजा दण्ड प्रयोग करें।

तस्यार्थे सर्वभूतानां गोप्तारं धर्मात्मजम्।
ब्रह्मतेजोमयं दण्डमसृजत्पूर्वमीश्वरः।
तं देशकालो शक्तिं च विद्यां चावेक्ष्य तत्वतः।
दण्ड सुप्तेषु जागर्ति दण्डं धर्मं विदुर्बुधाः, दण्डस्य हि भयात्सर्वं जगत् भोगाय कल्पते।[10]

दण्ड की आवश्यकता और महत्व स्पष्ट स्वीकार कर इसकी अनिवार्यता स्मृतिकार ने दिखायी है।
यह प्रत्यक्षतः सिद्ध भी है कि प्रत्यक्षतः दण्डव्यवथा से ही प्रजा निषिद्ध कार्य में प्रवृत्त नहीं होती है। किन्तु दण्ड के प्रयोग हेतु न्यायाधीश की पात्रता के विषय में ग्रंथकार ने विशेष रूप से व्यवस्था दी है। क्योंकि प्रयोगकर्ता की पात्रता पर ही व्यवस्था का उचित प्रयोग निर्भर है। न्यायाधीश शास्त्र ज्ञान हीन, भोगासक्त न हो तथा वह पवित्र, बुद्धिमान उचित सहायको से युक्त होने पर ही दण्ड विधान कर सकता है।[11] विनय उसके लिए परम आवश्यक बताया गया यह तत्कालीन राजा अथवा आधुनिक विधि निर्माता अथवा न्यायाधीश के बारे में सूक्ष्म विचार है। जिससे यह समुचित विधि न्याय का निर्माण व प्रयोग कर सकते है। वह न्यायाधीश को दश कामज व आठ क्रोधज व्यसनो से भी दूर रहने का निर्देश देते हैं।

दशकामसमुत्थानि तथाष्टौ क्रोधजानि च।
व्यसनानि दुरन्तानि प्रयत्नेन विवर्जयेत्।।[12]

यह विधि न्याय विभाग के अधिष्ठाता हो या तत्कालीन राजा या आधुनिक न्यायाधीश यह योग्यता सर्वथा अपेक्षित रहेगी।

युद्ध में मानवीयपक्ष को विचार कर निःशस्त्र, शरणागत, युद्ध विमुख इत्यादि को न मारा जाये यह तत्कालीन युद्ध प्रक्रिया में भी दयास्थान का स्पष्ट निर्देश है। आधुनिक समय में रूस–यूक्रेन, इजराइल–फिलिस्तीन संघर्ष, कश्मीर में पाकिस्तान द्वारा जारी आतंकवाद में यह स्मृति स्थल स्पष्ट व्यवस्था देता है कि नागरिकों को युद्ध का लक्ष्य नहीं बनाया जाना चाहिए।[13] साथ ही युद्ध बन्दियों के साथ मानवता पूर्ण व्यवहार किया जाना चाहिए।

कर संग्रहण में स्मृतिकार ने बहुत विस्तार से वैधानिक व्यवस्था दी है। जिसमें कर न लेना व अधिक लेना दोनों में ही दोष बताया है।

नोच्छिन्द्यादात्मनो मूलं परेषां चातितृष्णया।
उच्छिन्दन्ह्यात्मनो मूलमात्मानं ताश्च पीडयेत्।।[14]

यह मध्यम कर व्यवस्था का निर्देश है। जिसमें शासन को जोंक–रुधिर, बछड़ा–दूध भ्रमर–शहद के संबंध की तरह कराधान करना चाहिए।[15] यह शासन संचालन के लिए आवश्यक भी है। वर्तमान में अनेक निःशुल्क योजनाएं शासन व्यवस्था संचालन के लिए ठीक नहीं है। यह इसमें निर्देश प्राप्त होता है। आधुनिक जी. एस.टी. की चार दरों में से प्रायः 18ः की दर अधिकतम वस्तुओं पर माने तो यह स्मृति सम्मत है। क्योंकि स्मृतिकार भी धान, घी, औषधि, शाक पाषाण पत्र इत्यादि में छठे भाग के बराबर कर लेने के निर्देश देते हैं।

धान्यानामष्टमो भागः षष्ठो द्वादश एव वा।।
आददीताथ षड्भागं द्रुमासमधुसर्पिषाम्..... ।[16]

यहाँ स्मृति अनुसार 17% के आसपास होता है जो की उचित है।

ज्ञान और ज्ञान दाता की राजा विशेष व्यवस्था करें इसमें परोक्ष रूप से राज्य का ही लाभ होता है। तत्कालीन वेद पाठी या आधुनिक अनुसंधाता या वैज्ञानिक की तुलना की जा सकती है स्मृतिकार इनकी शासन से स्वकीय पुत्र की तरह व्यवस्था का पक्षधर है।[17] ज्ञानतंत्र की रक्षा से अंततः राज्य का ही श्रेय होता है। यह स्मृतिकार ने स्पष्ट कहा है। यहां बौद्धिक सम्पदा को मूल्यवान बताया गया है।

जहां न्यायाधीश को झूठी गवाही या साक्ष्य प्रतीत हो उसे उस अभियोग पर दोबारा विचार करना चाहिए। क्योंकि ऐसे निर्णय होने का कोई अर्थ नहीं है।

यस्मिन्यस्मिन्विवादे तु कौटसाक्ष्यं कृतं भवेत्।
तत्तत्कार्यं निवर्तेत कृतं चाप्यकृतं भवेत्।।[18]

यह बहुत ही सत्यपरक दृष्टि है जिसमें न्यायिक पुनरीक्षण को प्रत्यक्ष रूप से निर्देशित किया गया है वर्तमान में भी अनेक विषयों पर न्यायिक पुनरीक्षण किया जाता है जो कि देशकाल परिस्थिति से भी प्रेरित होता है। ऋण पर ब्याज लेने के विषय में 100 रूपये पर 1-25 अथवा 100 रूपये का 2 रूपये प्रतिमाह को प्रशस्य बताकर स्मृतिकार ने अधिक सूदखोरी को निन्दित बताया जिससे आर्थिक अपराध होते है।[19] ब्याज प्रक्रिया पर यहां आदर्श विधि व्यवस्था दी गई है। बैकिंग नियमो के सम्बंध मे आधार विधि हमें यहां प्राप्त होती है।

जुए और किसी प्राणी, वस्तु, खेल को निमित्त बनाकर खेले गए समाहव्य को ग्रंथकार ने बिल्कुल बंद करने का निर्देश दिया है उनके अनुसार यह शासक का नाश करने वाला है।[20] वर्तमान में भी किसी भी प्रकार का जुआ अनैतिक धन और लालच को जन्म देकर अपराध का आरंम्भिक बीज बनता है जो निश्चय ही समाप्त करने योग्य है।

निष्कर्षत

इस तरह मनुस्मृति के उपर्युक्त वर्णित स्थलों के साथ अनेक स्थल ऐसे हैं जिनमें विधि न्याय के आत्म तत्व का ग्रहण किया गया है जिस तरह आत्म तत्व शरीर परिवर्तन पर भी अपरिवर्तित अक्षुण्ण रहता है वैसे ही विधि न्याय का आत्मतत्व जो कि भारतीय ज्ञान परंपरा में अनादिकाल से प्रवाहित है वह आत्मतत्व ही मनुस्मृति में अनुस्यूत होकर तत्कालीन समय में उदय होकर वर्तमान में भी विभिन्न विषयों में वैश्विक समाज को आलोकित कर रहा है। इसमें वर्णित विभिन्न विषय हमें न्याय के विभिन्न क्षेत्रों में भी आगे बढ़ाने के लिए आधार दृष्टि प्रदान करते हैं अतः मनुस्मृति इस दृष्टि बार–बार स्मरणीय और अनुकरणीय है।

संदर्भ सूची

1. मनुस्मृति पंडित भट्टरामेश्वर कृत सरलाभाषाटीका से युक्त प्रकाशक चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान संस्करण 2011 अध्याय 1/94, 95 पृष्ठ 28
2. वहीं चक्रिणो दशमीस्थस्य रोगिणो भारिणः स्त्रियाः। स्नातकस्य च राज्ञश्च पन्था देयो वरस्य च।। अध्याय 2/138 पृष्ठ 33
3. वहीं अध्याय 2/220 पृष्ठ 43
4. वहीं अध्याय 4/56 पृष्ठ 90
5. वहीं अध्याय 4/228 पृष्ठ 112
6. वहीं अध्याय 5/49 पृष्ठ 123
7. वहीं अध्याय 5/51, 52 पृष्ठ 123
8. वहीं अध्याय 6/92 पृष्ठ 151
9. वहीं अध्याय 3/39, 42 पृष्ठ 51, 52
10. वहीं अध्याय 7/14,16,18,22 पृष्ठ 154, 155
11. वहीं अध्याय 7/31, 32, 41, 42 पृष्ठ 156, 157
12. वहीं अध्याय 7/45 पृष्ठ 158
13. वहीं न कूटैरायुधैः..... ।।
    न च हन्यात्..... ।।
    न सुप्तं न..... ।।
    नायुधव्यसनप्राप्तं..... ।। अध्याय 7/90–93 पृष्ठ 164
14. वहीं अध्याय 7/139 पृष्ठ 171
15. वहीं अध्याय 7/129 पृष्ठ 169
16. वहीं अध्याय 7/130, 131 पृष्ठ 170
17. वहीं अध्याय 7/135, 136 पृष्ठ 170
18. वहीं अध्याय 8/117 पृष्ठ 200
19. वहीं अध्याय 8/140, 141 पृष्ठ 203, 204
20. वहीं अध्याय 9/221 पृष्ठ 271